समक्ष आरएन मित्तल जे.

साराभाई मशीनरी- याचिकाकर्ता।

बनाम

मैसर्स हरियाणा डिटर्जेंट लिमिटेड- प्रतिवादी।

कंपनी याचिका 1982 की संख्या 68

11 अप्रैल 1985.

*कंपनी अधिनियम (*1956 का I)- धारा 433 और 439- कंपनी न्यायालय नियम, 1959- नियम 102- मध्यस्थ द्वारा ऋणदाता के पक्ष में और कंपनी के विरुद्ध दिया गया निर्णय- न्यायालय का निर्णय, निर्णय को न्यायालय का नियम बनाता है- कंपनी पर ऋणदाता द्वारा धारा 434 के तहत नोटिस दिया गया मामले को मध्यस्थ के पास भेजे जाने से पहले - किसी अन्य लेनदार द्वारा दायर कंपनी को बंद करने की याचिका में याचिकाकर्ता के रूप में प्रतिस्थापित करने के लिए लेनदार द्वारा दायर आवेदन - अदालत के फैसले को निष्पादित करने के लिए कोई प्रयास नहीं किया गया - ऐसी स्थिति में समापन के लिए याचिका - क्या सुनवाई योग्य है - ऋणदाता संशोधित याचिका दायर करने की अनुमति - ऐसे याचिकाकर्ता - क्या नई अदालती फीस का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है।

आयोजित, कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 433 में प्रावधान है कि यदि कोई कंपनी अपने ऋण का भुगतान करने में असमर्थ है तो उसे अदालत द्वारा बंद किया जा सकता है। अभिव्यक्ति "जब कंपनी अपने ऋणों का भुगतान करने में असमर्थ है" को धारा 434 में निपटाया गया है। धारा 434 से यह स्पष्ट है कि एक कंपनी को अपने ऋणों का भुगतान करने में असमर्थ

माना जाता है यदि खंड (ए) से (सी) में कोई भी शर्त संतुष्ट हो। खंड (ए) एक सामान्य खंड है और निर्णय, ऋण सहित सभी प्रकार के ऋणों पर लागू होता है। यह सच है कि निर्णय ऋण के मामले में, लेनदार खंड (बी) का लाभ ले सकता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि वह खंड (ए) का लाभ नहीं ले सकता क्योंकि दोनों खंड एक दूसरे से अलग नहीं हैं। इसी प्रकार यदि कोई लेनदार कंपनी को नोटिस देने के बाद उसके विरुद्ध डिक्री प्राप्त कर लेता है, तब भी वह खंड (ए) का लाभ ले सकता है क्योंकि डिक्री के बाद न तो लेनदार का चरित्र बदलता है और न ही ऋण का। ऐसे में डिक्री धारक अदालत के आदेश को निष्पादित किए बिना कंपनी को बंद करने के लिए धारा 433 के तहत एक आवेदन रख सकता है, यदि उसने अधिनियम की धारा 434 के खंड (ए) के तहत मांग का नोटिस दिया है।

(पैरा 7)

आयोजित, कंपनी नियम, 1959 के नियम 102 को पढ़ने से यह प्रावधान है कि संशोधित याचिका को कंपनी के समापन के लिए याचिका के रूप में माना जाएगा और उस तारीख को प्रस्तुत किया गया माना जाएगा जिस दिन मूल याचिका प्रस्तुत की गई थी। इस प्रकार प्रतिस्थापित याचिकाकर्ता संशोधित याचिका पर नए न्यायालय शुल्क का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं है।

(पैरा 10)

कंपनी (न्यायालय) नियम, 1959 *की धारा* 433, 434 और 439 *के अंतर्गत संशोधित कंपनी याचिका* कंपनी अधिनियम, कंपनी (न्यायालय) नियमों के नियम 9 के साथ पठित, जिसमें प्रार्थना की गई है कि प्रतिवादी कंपनी को कंपनी अधिनियम के प्रावधानों के तहत इस माननीय न्यायालय की देखरेख में बंद करने का आदेश दिया जाए।

याचिकाकर्ता के वकील आर. एल. बत्ता।

प्रतिवादी की ओर से वकील आर. के. तलवार।

निर्णय

राजेंद्र नाथ मित्तल, जे. **(मौखिक)**

(1) संक्षेप में, तथ्य यह है कि मेसर्स डेल्हीट क्लॉथ मिल्स ने प्रतिवादी को बंद करने का आदेश देने के लिए कंपनी अधिनियम, 1956 (इसके बाद "अधिनियम" के रूप में संदर्भित) की धारा 433, 434 और 439 के तहत वर्तमान याचिका दायर की है। पक्षों को सुनने के बाद, नियमों के नियम 96 के तहत इस न्यायालय के 20 अक्टूबर, 1983 के आदेश के तहत याचिका को विज्ञापित करने का आदेश दिया गया। तदनुसार, तत्कालीन याचिकाकर्ता द्वारा इसका विज्ञापन किया गया था।

(2) मेसर्स साराभाई मशीनरी, वर्तमान याचिकाकर्ता ने मेसर्स दिल्ली क्लॉथ मिल्स के मामले में, इसे याचिकाकर्ता के रूप में प्रतिस्थापित करने के लिए मुख्य याचिका में कंपनी (न्यायालय) नियम, 1959 के नियम 101, 102 और 9 के तहत 1984 का सीए नंबर 74 दायर किया और इसे वही छोड़ दिया। इसके बाद, पक्षों के बीच हुए समझौते को ध्यान में रखते हुए, प्रतिवादी ने दिल्ली क्लॉथ मिल्स को राशि का भुगतान किया और बाद में उसकी याचिका खारिज करने पर सहमति व्यक्त की गई। परिणामस्वरूप, दिनांक 24 मई, 1984 के आदेश द्वारा मैसर्स साराभाई मशीनरी को याचिकाकर्ता के रूप में प्रतिस्थापित करने की अनुमति दी गई। बाद में, इसे तीन सप्ताह की अवधि के भीतर 13 दिसंबर, 1984 के आदेश द्वारा संशोधित याचिका दायर करने की अनुमति दी गई। उस आदेश के अनुपालन में याचिकाकर्ता ने 10 जनवरी 1985 को संशोधित याचिका दायर की।

(3) याचिका में कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने 19 मार्च, 1975 के एक

अनुबंध के अनुसरण में प्रतिवादी- कंपनी का सिंथेटिक डिटर्जेंट प्लांट स्थापित किया और प्रतिवादी पर रुपये 21,67,208.15 की राशि बकाया है। इसके अलावा, याचिकाकर्ता 1 दिसंबर, 1979 से वसूली की तारीख तक उक्त राशि पर 18 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज लगाने का हकदार है। समझौते में मध्यस्थता खंड के मद्देनजर, मामला श्री अजीत एच. मेहता, वकील की मध्यस्थता के लिए भेजा गया था, जिन्होंने 27 जून, 1983 को निर्णय दिया (संलग्न पी. 1) और माना कि उपरोक्त राशि प्रतिवादी की ओर से याचिकाकर्ता को देय थी। याचिकाकर्ता के कहने पर दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा 18 मई, 1984 के फैसले (अनुलग्नक पी. 2) के तहत इस पुरस्कार को अदालत का नियम बना दिया गया था। आगे कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने मध्यस्थता कार्यवाही में 19,000 रुपये का खर्च उठाया और प्रतिवादी से इसे वसूलने का हकदार है।

(4) याचिकाकर्ता का मामला यह है कि उसने 11 सितंबर, 1980 के अधिनियम की धारा 433 और 434 के तहत 21,67,208.15 रुपये की राशि का भुगतान करने के लिए नोटिस दिया था। लेकिन इसके बावजूद राशि का भुगतान नहीं किया गया। परिणामस्वरूप, यह प्रार्थना की गई कि प्रतिवादी-कंपनी को बंद करने का आदेश दिया जाए।

(5) याचिका का प्रतिवादी ने इस आधार पर विरोध किया है कि चूंकि याचिकाकर्ता ने दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले पर अमल नहीं किया, इसलिए याचिका सुनवाई योग्य नहीं है; याचिकाकर्ता ने पिछली याचिका में संशोधन नहीं किया बल्कि बिल्कुल नई याचिका दायर की; कि प्रतिवादी उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ अपील दायर करने का इरादा रखता है; याचिकाकर्ता 260 रुपये का स्टांप शुल्क का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी था परन्तु उसने ऐसा नहीं किया और इस याचिका को तीन सप्ताह की अवधि के भीतर दाखिल

किया जाना आवश्यक था लेकिन इसे उक्त अवधि के भीतर दाखिल नहीं किया गया।

(6) निर्धारण के लिए पहला प्रश्न यह है कि क्या दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले को क्रियान्वित किए बिना वर्तमान याचिका सुनवाई योग्य है। मामले के मुख्य तथ्यों के बारे में कोई विवाद नहीं है। याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी को राशि का भुगतान करने के लिए 11 सितंबर, 1980 को एक नोटिस दिया। नोटिस की तामील के बाद मामले को मध्यस्थ के पास भेजा गया, जिसने याचिकाकर्ता के पक्ष में फैसला सुनाया, जिसे 18 मई, 1984 को दिल्ली उच्च न्यायालय ने अदालत का नियम बना दिया। हालांकि, याचिकाकर्ता द्वारा अब तक निष्पादन के लिए कोई कार्यवाही नहीं की गई है।

(7) इस पृष्ठभूमि के साथ अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों पर ध्यान देना उचित होगा। धारा 433 में प्रावधान है कि यदि कोई कंपनी अपने ऋण का भुगतान करने में असमर्थ है तो उसे अदालत द्वारा बंद किया जा सकता है। अभिव्यक्ति "जब कंपनी अपने ऋण का भुगतान करने में असमर्थ है" को धारा 434 में निपटाया गया है जो इस प्रकार है:

> “434. (1) एक कंपनी को अपने ऋण का भुगतान करने में असमर्थ माना जाएगा-
>
> (a) यदि कोई लेनदार, समनुदेशन द्वारा या अन्यथा, जिसकी कंपनी पांच सौ रुपये से अधिक की ऋणी है, ने कंपनी की मांग को उसके पंजीकृत कार्यालय में, पंजीकृत डाक द्वारा या अन्यथा वितरित करवाकर सेवा प्रदान की है। उसके हाथ में कंपनी को देय राशि का भुगतान करने की आवश्यकता होती है और कंपनी ने उसके बाद तीन सप्ताह तक राशि का भुगतान करने, या

लेनदार की उचित संतुष्टि के लिए इसके लिए सुरक्षा या समझौता करने की उपेक्षा की है; या

(b) यदि कंपनी के किसी लेनदार के पक्ष में किसी अदालत के डिक्री या आदेश पर जारी निष्पादन या अन्य प्रक्रिया पूरी तरह या आंशिक रूप से असंतुष्ट होकर लौटा दी जाती है; या

(c) यदि यह अदालत की संतुष्टि के लिए साबित हो जाता है कि कंपनी अपने ऋणों का भुगतान करने में असमर्थ है, और यह निर्धारित करने में कि क्या कोई कंपनी अपने ऋणों का भुगतान करने में असमर्थ है, तो अदालत कंपनी की आकस्मिक और संभावित देनदारियों को ध्यान में रखेगी।

* * *

इस अनुभाग से यह स्पष्ट है कि यदि खंड (ए) से (सी) में से कोई भी शर्त पूरी हो जाती है तो एक कंपनी को अपने ऋण का भुगतान करने में असमर्थ माना जाता है। याचिकाकर्ता का मामला पूरी तरह से धारा 434 की उपधारा (1) के खंड (ए) में आता है क्योंकि उसने कंपनी को डिमांड नोटिस भेजा है। श्री तलवार द्वारा एक तर्क उठाया गया है कि याचिकाकर्ता ने नोटिस की सेवा के बाद राशि की डिक्री प्राप्त कर ली है और इसलिए, वर्तमान मामला खंड (ए) के अंतर्गत नहीं आता है, बल्कि खंड (बी) के अंतर्गत आता है। उनका तर्क है, याचिकाकर्ता खंड (बी) का लाभ नहीं ले सकता क्योंकि इसने दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले पर अमल नहीं किया। मैं इस प्रस्तुतिकरण से प्रभावित नहीं हूं। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि खंड (ए) एक सामान्य खंड है और निर्णय ऋण सहित सभी प्रकार के ऋणों पर लागू होता है। यह सच है कि निर्णय ऋण के मामले में, लेनदार खंड (बी) का लाभ ले सकता है। लेकिन

इसका मतलब यह नहीं है कि वह खंड (ए) का लाभ नहीं उठा सकता क्योंकि दोनों खंड एक-दूसरे से अलग नहीं हैं। इसी प्रकार यदि कोई लेनदार कंपनी को नोटिस देने के बाद उसके विरुद्ध डिक्री प्राप्त कर लेता है, तब भी वह खंड (ए) का लाभ ले सकता है क्योंकि डिक्री के बाद न तो लेनदार का चरित्र बदलता है और न ही ऋण का। उपरोक्त दृष्टिकोण में मैं *सीताई मिल्स लिमिटेड* बनाम *एन. पेरुमलसामी और अन्य*[1] के मामले में मद्रास उच्च न्यायालय की एक डिवीजन बेंच की निम्नलिखित टिप्पणियों पर निर्भर करता हूं:

> "एक लेनदार, जिसने मुकदमा दायर किया है और कंपनी के खिलाफ डिक्री प्राप्त की है, वह अभी भी कंपनी का लेनदार होगा, जिसका कंपनी द्वारा पैसा बकाया है। ऐसा हो सकता है कि मूल ऋण डिक्री में विलीन हो गया हो और जो व्यक्ति मूल रूप से ऋणदाता था, वह बाद में डिक्री-धारक बन गया हो, लेकिन यह किसी भी तरह से ऋणदाता के रूप में कंपनी से कर्ज के रूप में उसके चरित्र या उसे देय धन के चरित्र को नष्ट नहीं करता है। वास्तव में, धारा 434(1)(ए) में 'ऋण' शब्द का भी उपयोग नहीं किया गया है और यह केवल यह बताता है कि कंपनी उस समय देय पांच सौ रुपये से अधिक की राशि के लिए किसकी ऋणी है। नतीजतन, धारा 434(1) (ए) के तहत संतुष्ट होने के लिए यह आवश्यक है कि एक ऋणदाता होना चाहिए और उस ऋणदाता के लिए कंपनी 500 रुपये से अधिक की ऋणी होनी चाहिए और उस लेनदार ने कंपनी को नोटिस भेजा होगा और कंपनी ने नोटिस की सेवा की तारीख से तीन सप्ताह के भीतर मांग का अनुपालन नहीं किया था। यहां तक कि

[1] (1980) 50 कंपनी मामले 422।

एक निर्णय ऋणी भी धन डिक्री के संबंध में डिक्री-धारक का ऋणी कहा जा सकता है, जो लेनदार होगा। नतीजतन, हमारी राय में, अधिनियम की धारा 434(1) (ए) और 434(1) (बी) के बीच कोई पारस्परिक बहिष्करण नहीं है और दोनों में एक क्षेत्र समान है, जिसे ओवरलैप कहा जा सकता है। इसलिए हमारी राय है कि धन डिक्री के संबंध में एक डिक्री धारक भी धारा 434(1) (ए) के तहत कार्यवाही शुरू कर सकता है यदि उस प्रावधान की अन्य आवश्यकताएं पूरी होती हैं।"

नतीजतन, याचिकाकर्ता, दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले को क्रियान्वित किए बिना, खंड (ए) के लाभ का दावा कर सकता है क्योंकि उसने उक्त खंड के तहत अपेक्षित नोटिस दिया था।

(8) निर्धारण के लिए दूसरा प्रश्न यह है कि क्या याचिकाकर्ता ने याचिका में संशोधन करते समय इसे पूर्ण रूप से बदल दिया है और यदि हां, तो किस प्रभाव से। माना जाता है कि याचिकाकर्ता इस न्यायालय के 13 दिसंबर, 1984 के आदेश के मद्देनजर याचिका में संशोधन करने का हकदार था। संशोधन के बाद याचिकाकर्ता को अपने मामले के तथ्यों को प्रस्तुत करना था और मूल याचिकाकर्ता से संबंधित तथ्यों को छोड़ना था। इन परिस्थितियों में यह स्वाभाविक है कि याचिका एक नई याचिका प्रतीत होती है। लेकिन इसे टाला नहीं जा सकता। यह मेरे संज्ञान में नहीं लाया गया है कि अब शामिल किए गए कौन से तथ्य अनावश्यक हैं और उन तथ्यों की दलील देकर प्रतिवादी को कैसे पूर्वाग्रह से ग्रसित किया गया है। आपत्ति अत्यधिक तकनीकी प्रतीत होती है। फलस्वरूप मुझे इसमें कोई योग्यता नजर नहीं आती है।

(9) तीसरा प्रश्न जिसके लिए निर्धारण की आवश्यकता है वह यह है कि यदि प्रतिवादी दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ अपील दायर करने

का इरादा रखता है तो क्या याचिकाकर्ता समापन के लिए आवेदन दायर करने का हकदार नहीं है। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि यदि किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई डिक्री पारित की जाती है, तो वह उस पर तब तक बाध्यकारी होती है जब तक कि उसे रद्द नहीं कर दिया जाता। इसलिए, यह नहीं माना जा सकता है कि चूंकि प्रतिवादी दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ अपील दायर करना चाहता है, इसलिए उस पर कोई राशि बकाया नहीं है और इसलिए, याचिकाकर्ता समापन के लिए आवेदन दायर करने का हकदार नहीं है।

(10) निर्णय के लिए चौथा प्रश्न यह उठता है कि क्या याचिकाकर्ता संशोधित याचिका पर नए न्यायालय शुल्क का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है। प्रतिवादी के विद्वान वकील ने कानून के किसी भी प्रावधान की ओर ध्यान आकर्षित नहीं किया है जिसके तहत धारा 433, 434 और 439 के तहत एक याचिका में एक प्रतिस्थापित पक्ष संशोधित याचिका पर नई अदालती फीस का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है। इसके अलावा, नियमों के नियम 102 में प्रावधान है कि संशोधित याचिका को कंपनी के समापन याचिका के रूप में माना जाएगा और उस तारीख को प्रस्तुत माना जाएगा जिस दिन मूल याचिका प्रस्तुत की गई थी। सभी परिस्थितियों पर विचार करने के बाद, मेरा विचार है कि याचिकाकर्ता संशोधित याचिका पर नई अदालती फीस का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं है।

(11) पाँचवाँ प्रश्न जिसके निर्धारण की आवश्यकता है वह यह है कि यदि संशोधित याचिका आदेश के अनुसार तीन सप्ताह की अवधि के भीतर नहीं बल्कि उसके छह दिन बाद दायर की गई थी, तो क्या इसे इस आधार पर खारिज किया जा सकता है। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 148 किसी न्यायालय को उस अवधि को बढ़ाने का अधिकार देती है, यदि किसी कार्य को

करने के लिए न्यायालय द्वारा निर्धारित अवधि समाप्त हो गई हो। यह भी अच्छी तरह से स्थापित है कि प्रक्रिया के कानून न्याय के हाथ से बने हैं और इसे आगे बढ़ाने के लिए हैं। इसलिए, मैं इस तकनीकी आधार पर याचिका को खारिज करने और उक्त धारा के तहत याचिका दायर करने की अवधि को छह दिन बढ़ाने का इच्छुक नहीं हूं।

(12) फैसले से अलग होने से पहले मैं श्री तलवार के एक और तर्क पर गौर कर सकता हूं। उन्होंने आग्रह किया है कि, प्रतिवादी एक सॉल्वेंट कंपनी है लेकिन जिस संयुक्त क्षेत्र की परियोजनाओं के तहत इसे स्थापित किया गया था, उसके पतन के कारण इसे झटका लगा है। यह उत्पादन को पुनर्जीवित करने और शुरू करने के लिए कदम उठा रहा है और इस उद्देश्य के लिए यह फैक्ट्री परिसर को मेसर्स हिंदुस्तान लीवर लिमिटेड को पट्टे पर दे रहा है, ताकि पर्याप्त धन उत्पन्न हो और कंपनी के ऋण समाप्त हो जाएं। उनका कहना है कि इस स्थिति में कंपनी को बंद करने का आदेश देना उचित नहीं होगा। मुझे इस निवेदन में भी कोई योग्यता नजर नहीं आती। याचिका 1982 में ही दायर की गई थी। इस अवधि के दौरान प्रतिवादी किसी न किसी आधार पर कार्यवाही में देरी कर रहा था। याचिकाकर्ता द्वारा मशीनरी 1975 में स्थापित की गई थी। 10 साल से अधिक की अवधि बीत चुकी है लेकिन प्रतिवादी द्वारा भुगतान नहीं किया गया है। याचिका के लंबित रहने के दौरान प्रतिवादी ने एक स्कीम भी दायर की। न्यायालय ने उनकी मंजूरी प्राप्त करने के लिए असुरक्षित लेनदारों की बैठक बुलाने का आदेश पारित किया, लेकिन सबसे अच्छे ज्ञात कारणों से, प्रतिवादी ने अपेक्षित खर्च जमा नहीं किया और इसलिए, उक्त उद्देश्य के लिए बैठक नहीं बुलाई जा सकी। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि श्री तलवार द्वारा याचिकाकर्ता के भुगतान में देरी करने के उद्देश्य से यह विवाद उठाया गया है। परिणामस्वरूप मैं इसे अस्वीकार करता

हूं।

(13) उपरोक्त कारणों से, मैं आदेश देता हूं कि कंपनी को बंद कर दिया जाए। आदेश 30 दिनों की अवधि के भीतर अंग्रेजी और हिंदी ट्रिब्यून और हरियाणा सरकार के राजपत्र में याचिकाकर्ता द्वारा विज्ञापित किया जाएगा। आधिकारिक परिसमापक को कंपनी का प्रभार लेने का निर्देश दिया गया है।

अस्वीकरण : *स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा।*

अवंतिका
प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी
(Trainee Judicial Officer)
करनाल, हरियाणा